प्रस्तावना

आचार्य श्री कालिकाप्रसादशुक्ल ने अपने महाकाव्य ''श्रीराधाचरितमहाकाव्यम्'' में श्री राधाकृष्ण का सामान्य रूप से वर्णन न करके श्री राधा जी का आद्यापराशक्तिरूप तथा श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्वरूप बहुत से मनोहर छन्दोजालों से, अत्यन्त कोमलकान्त पदावलियों के द्वारा एवं विशिष्ट अलंकारों के द्वारा अंलकृत करके ऐसे गुम्फित किया है कि जिससे काव्यरसिक जन इस काव्य का बारम्बार अनुशीलन एवं आस्वादन कर सकें तथा भगवच्चरणारविन्दानुरक्त जन इस काव्य का पुनः पुनः पाठ करके भगवच्चरणकमलों का निरन्तर चिंतन, मनन, निदिध्यासन कर सकें। और अधिक क्या कहें, इस काव्य में रासलीला वर्णन भी शान्तरसाप्लावित है – यह इस काव्य का वैशिष्ट्य है। भक्ति रस वैराग्यमिश्रित यह मौलिक काव्य काव्यरसिकों और भक्तों – दोनों के लिए अत्यन्त आनन्द प्रदसिद्ध होगा– ऐसा कवि ने विश्वास प्रकट किया है।

आजकल श्री वृन्दावनधाम में व्रजमण्डल में तथा स्थानान्तरों में सच्चिदानन्दघन परब्रह्म जगदुत्पत्तिस्थिति प्रलयकारण के भी कारण श्री कृष्ण की किसी अनिर्वचनीय शक्ति के द्वारा इस चराचरात्मक जगत् का सञ्चालन किया जा रहा है – ऐसा वेदशास्त्रपरिशीलन शाली सभी विद्वान् महानुभाव मानते हैं। योगाभ्यास क्षपितकल्मषनिर्मलात्मा वाले मुनियों के द्वारा यही अनुपम परात्पराशक्ति विभिन्न शास्त्रों में मुक्तकण्ठ से 'राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, सावित्री प्रभृति भिन्न–भिन्न अभिधानों से गाई जाती है। जैसे–

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मी सरस्वती।

सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधास्मृता।।[1] (देवी भागवते 9/1/1)

यह जगदादिभूत भगवान् श्री कृष्ण की आह्लादिनी परामहती शक्ति अथवा आद्या प्रकृति भगवान् से भिन्न नहीं है, अपितु तत्स्वरूप रूपा ही सदा विराजमान

---

[1] देवी भागवतम्– 9/1/1

रहती है। "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" इस सिद्धान्त के कारण उस – उस लीला को करने के लिए उस – उस स्वरूप को धारण करती है। जैसे जगत् का परिपालन करने के लिए पवित्रितविष्णुवामपादा लक्ष्मी रूपा, मर्यादा को सुदृढ़ करने के लिए अलंकृत श्रीरामवामभागा सीतारूपा, श्री कृष्ण को रास में नर्तन कराने के लिए रासस्वरूपा राधा रूपा तथा तप के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए पार्वती रूपा बन जाती है।

"एकमेव द्विधाऽभवत्" इस रीति से राधाकृष्ण में तनिक भी पार्थक्य प्रतीत नहीं होता। श्री राधा के स्वरूप को जानने से पूर्व श्रीकृष्ण के स्वरूप को जान लेना चाहिये ; अन्यथा एकता के कारण उनमें से एक के बोधाभाव के कारण दूसरे का बोध दुर्गम हो जाएगा।

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"[1] इस भागवतोक्ति से श्री कृष्ण की मधुराकृति लीलाधाम आनन्दचिन्मय रसोदधि मन्मथमन्मथ सर्वाङ्ग सुभगा सुशोभित होती है तथा वे अपने ही माधुर्य रस का आस्वादन करने के लिए आह्लादिनी शक्ति श्री राधा को अभिव्यक्त करते हैं श्री राधा ही श्रीकृष्ण हैं और श्री कृष्ण ही श्रीराधा। उन दोनों में कोई भेद नहीं है। उनकी रसमधुरा लीला भी सत्य और नित्य विलसित होती है। श्री कृष्ण के नित्य नवीन माधुर्य का प्रादुर्भाव श्री राधा ही है। श्री कृष्ण का सामीप्य ही श्री राधा के प्रेम की वर्द्धनशीलता है तथा श्री राधा के सान्निध्य में ही श्री कृष्ण के माधुर्य की नवनवायमानता विद्योतित होती है। श्री राधा माधव में नितान्त अभेद होते हुए भी श्री राधा श्री माधव की निरुपाधिक भक्ता, प्रिया एवं आराधिका हैं। इसी प्रकार श्री राधा श्री माधव की ही समाराध्या हैं।

श्री राधा के श्रीमाधव विषयक अनुराग में लौकिक वासना की गन्धमात्र भी नहीं है। और वह अनुराग स्फटिकमणि के समान निर्मल, भागीरथी के प्रवाह की

---

[1] श्रीमद् भागवतम्– 1/3/28

भाँति सतत् प्रवहमान्, कहीं भी कभी भी विच्छिन्न न होने वाला, कामवासना शून्य, अहन्तामममतालेशरहित, किसी भी प्रयोजन की समीक्षा न करता हुआ, लोकाभिशाप को कुछ भी न गिनता हुआ, निखिल रात्रि में निखिल दिवस में, निखिल दिशाओं में, सम्पूर्ण कर्म में, किम्बहुना, निखिल चराचरात्मक ब्रह्माण्ड को परम प्रेमास्पद श्री कृष्ण रूप ही देखता है; तत्सुखसुखित्व भावना से ही सब आचरण करता है। सर्वत्र व्यवहार करता है, जरा भी स्वसुख को नहीं गिनता।

इस प्रेम साधना में लौकिक दृष्टि से देखे जाने पर प्राकृत प्राणियों को शृङ्गार रसाभास प्रतीत हो सकता है। कभी–कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ लौकिक भोगकाम सुखादिक हैं। परन्तु अलौकिक प्रेमास्पद सच्चिदानन्द परब्रह्म में लौकिकता का प्रवेश ही असंभव है। यह वस्तु यथायथ जानने से पूर्व श्री राधामाधव की पराशक्ति अर्जित करनी चाहिए। उसकी प्राप्ति के पश्चात् ही उन दोनों के अगम्य स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। और तभी उन दोनों की लीला अवगत होगी। इसके लिए समस्त लौकिक वस्तु परिहेय है; "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"[1] यह उनका प्रतिज्ञावाक्य निरन्तर ध्यान में रखना चाहिये।

श्री राधा माधव का वेदों के द्वारा भी दुर्ज्ञेय, नेतिनेति पदों से अन्विष्यमाण पराशक्ति से ही गम्यगान परम रहस्य जब तक ज्ञात नहीं होगा, तब तक उनकी सम्पूर्ण लीला ग्राम्य कथा के समान ही प्रतीत होगी। क्योंकि सभी पुरुषार्थों से विलक्षण यह योगियों के द्वारा भी दुरधिगम पदार्थ है। पहले तो गोपी रहस्य ही दुर्बोध है, राधा रहस्य की तो बात ही क्या है? साधारण जनों की बात तो दूर रही, विद्वानों के लिए भी यह रहस्य आज भी बना हुआ है कि परम पुरुषार्थ मोक्ष में भी निरभिलाषा श्री राधा केवल श्री कृष्ण के प्रेम की ही अभिलाषा करती है। सर्वकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ भगवान् परमेश्वर में भक्ति हो परन्तु उसके फल की

---

[1] श्रीमद् भगवद्गीता–18/66

अभिलाषा न की जाए। कैसी है यह भक्ति? कैसा है इस भक्ति का प्रकार ? कैसा है त्याग? यह सब रहस्य ही बना हुआ है।

यह तो बहुत ही रहस्य की बात है कि परमाराध्य गोपियों को उस भक्ति में आपाततः सर्वविध शृङ्गार और भोग की प्रतीति होती है। परन्तु उस शृङ्गार से और उस भोग से उन गोपियों का अपना कोई स्वार्थ नहीं है। केवल परमप्रेमास्पद सच्चिदानन्द श्री कृष्ण की ही सुखसमीहा में उनके प्रत्येक श्वास प्रश्वास का उपयोग होता है। मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्ति का प्रयोग होता है। शरीर की सभी क्रियाओं का विनियोग स्वभावतः ही दिखाई देता है। परन्तु इस परम त्याग और भोग का सहभाव प्राकृतिक प्राणियों के चित्त को बलादान्दोलित कर देता है। यह बड़ी विचित्र बात है। इस आंदोलन में उनका कोई पूर्व संस्कार ही हेतु होता है, यहाँ क्या किया जा सकता है?

इसीलिये अखिल ब्रह्माण्डनायक के परात्पर ब्रह्म में निष्णात परम हंस श्री शुकदेव जी निखिल धर्म रहस्य के विज्ञाता निकटमृत्यु वाले परीक्षित को रासलीला सुनाते हुए पुलकित कलेवर हर्षाश्रुबिन्दुसमर्चितवामनयननीरज गद्गदगलेवाले सकल कल्मषापहारक भुक्तिमुक्तिप्रदायक गुह्यातिगुह्य रासलीला के रहस्य को प्रकाशित करते हैं।

प्रेम लक्षण भक्ति साम्राज्य सिंहासनासीन श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों और श्री राधा के श्री कृष्ण विषयक भाव को बारम्बार याद कर कर के बाह्यजगत् के ज्ञान से शून्य होकर, किम्बहुना, अपने आप को भी भुलाकर आनन्द सिन्धु में निमग्न हो जाते हैं। मथितनिखिलपापताप वाले भक्त शिरोमणि मिथिलामिहिर श्री विद्यापति निर्मल मन से श्री राधामाधव के माधुर्यरसाप्लावित गुणों को बार–बार गा गा कर परम प्रीति को प्राप्त करते हैं।

परन्तु यह बड़ी विचित्र बात है कि अनेक विख्यात मनीषी और प्रख्यात कवि भी दिव्यरसस्वरूप श्री राधाकृष्ण की मधुर लीला को लौकिक नायक –नायिकाओं

की लीला की भाँति वर्णन करते हुए जरा भी संकोच नहीं करते हैं, इसी प्रकार उनके दूसरे भाव भी आधुनिक काव्यों में वर्णित दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा लगता है कि इन कवियों की श्री राधाकृष्ण की लीला की लौकिक दृष्टि से वर्णन कला से साधारण जनों पर ऐसा दुष्प्रभाव पड़ा है जिससे सहृदयों के मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठते हैं। उनके पारमार्थिक दिव्यातिदिव्य अलौकिक स्वरूप को भूल कर जनसाधारण पित्तदोषदूषित चक्षु की भाँति मलिन ही मलिन देखते हैं।

अनेक वीतरागी वीतकल्मष मुनियों के द्वारा श्री राधा प्रेमजलधि में निमग्न होकर अनेक रत्नराशियाँ खोज कर भक्तजनों को समर्पित की गई हैं और उनके द्वारा रचित अनेक गद्यात्मक एवं पद्यात्मक ग्रन्थ हैं। उनके परिशीलन से संसार दावानलदग्धजन परम शान्ति का अनुभव करते हैं– इसमें शंका के लिये कोई अवकाश नहीं है। श्री राधा के चरित्रचित्रण में उन वीतरागियों की न केवल शुष्क कल्पना है और न मूलाधार के बिना कल्पना राजप्रासाद का निर्माण होता है। बल्कि समाधि में अपनी समस्त अनुभूति से जो उन्होंने साक्षात्कार किया, वहीं पर लेखनी चलाई है। इसीलिये वे सभी सम्प्रदायाचार्य वन्दनीय पूजनीय प्रातः स्मरणीय एवं अनुसरणीय ही हैं। उनके सिद्धान्त अवश्यमेवादरणीय हैं, उनमें कोई भी शंका नहीं करनी चाहिए।

जिस प्रकार त्रिलोकी को प्रकाशित करने वाले सूर्य के उदय होने पर सभी प्रकाश मन्द पड़ जाते हैं, उसी प्रकार श्री राधा नाम का उच्चारण करने पर सभी पुरुषार्थ विलीन हो जाते हैं। अतएव वीतरागी निर्मल मानस वाले परमहंस भी समाधिमग्न होकर राधा नाम का ही निरन्तर जप करते हैं। श्री राधाऽपरनामधेय 'प्रेम' महामन्त्र का एक बार भी उच्चारण करने वाले के मन में समस्त पुरुषार्थ निष्फलता को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उसका मन किसी भी अन्य पुरुषार्थ में नहीं रम सकता। यही सर्वकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थं प्रेम तत्त्व निखिलब्रह्माण्डनायक सकलसामर्थ्यसम्पन्न सर्वज्ञ श्री कृष्ण को भी वश में कर लेता है। और उस प्रेम

को सिद्ध करने के लिए अमोघ मन्त्र श्री राधा का नाम ही है। इसीलिये क्षीणकल्मष ज्ञानियों की बात तो दूर रही, श्री वृन्दावन के पशु पक्षी भी पापों को शान्त करने के लिए दिनरात घास और फल खाकर ऐसा आनन्द अनुभव करते हैं, जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है। प्रेम पदार्थ स्वयं ही गोपनीय होता है। उसका मन्त्र तो अत्यन्त गोपनीयता को प्राप्त होता है। अतएव उपनिषद् आदि में अत्यन्त गोपनीय रूप से उसका निवेश किया गया है। जिसके तत्त्व को साधक भक्त ही जानते हैं और जो अमूल्य द्रव्य होता है उसका संरक्षण लोक में अत्यन्त यत्नपूर्वक किया जाता है। परम धन की तो बात ही क्या है? परम धन के यत्नपूर्वक रक्षित होने पर भी लोगों की दृष्टि सदा वहीं पर लगी रहती है। श्री राधा नामक परमधन को सब ओर से निश्चित करके ही उसके चरणकमलपराग के लोभी तत्त्वज्ञ गुप्त रूप से अपने मानस के पिञ्जरे में यत्नपूर्वक रक्षा करते हैं और ध्यान करते हैं। त्रैलोक्य साम्राज्यसम्राट् भगवान् श्री कृष्ण भी उसे (श्री राधा को) परम धन मानकर सदा ध्यान करते हैं। प्रिय वस्तु की चर्चा सर्वत्र नहीं करनी चाहिए बल्कि मन में मनन करनी चाहिए। भगवान् व्रजेशनन्दन भी अपनी अभीष्ट श्री राधा के नाम का स्पष्ट सर्वत्र उच्चारण नहीं करते हैं, बल्कि वंशी ध्वनि के बहाने से जपते हैं। आचार्य शुक्ल प्रभृति विद्वान् तो ऐसा मानते हैं कि 'श्री राधा' नाम मन्त्र की परम रहस्यता को भलीभाँति जानकर ही महामुनीन्द्र सेवित चरण कमल वाले परमहंस श्री शुकदेव जी भी श्रीमद्भागवत में इस प्रेम महामन्त्र श्री राधा नाम का स्पष्ट उच्चारण नहीं करते हैं। किन्तु वृन्दावन की उन उन लीलाओं में उसका ऐसा ही संमिश्रण है जैसे जल में शर्करा दिखाई नहीं देती परन्तु रस पीने वाले को उसका स्वाद भली भाँति आता है। दूध में उसका सारभूत घी विद्यमान होते हुए भी प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता; परन्तु 'दूध' का उच्चारण करने पर घी की विद्यमानता प्रतीत होती ही है। यदि यह पता चल जाए कि यहाँ घी नहीं है तो कोई भी उसकी खोज न करे।

इसी प्रकार उपनिषदों में, वेदान्तसार में तथा श्रीमद् भागवत में ब्रह्मरूप दूध का निरूपण करने में श्री राधा रूप घी की सत्ता होती ही है अन्यथा दूध का नाम भी कोई न ले, खरीदने की तो बात क्या? श्रीमद् भागवत में भी 'अमी', 'वहतो वधूम्' 'अत्रावरोपिता कान्ता' 'कामिन्याः' 'यां गोपीमनयत् कृष्णः' 'प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यताम्' इत्यादि वाक्यों से श्रीराधा का ही संकेत किया गया है।

उसी करुणामयी सकलब्रह्माण्डकारणीभूता श्री राधा के चरणकमलों में वाङ्मयी समर्चना आचार्य कालिकाप्रसाद शुक्ल ने त्रयोदश सर्गात्मक 'श्रीराधाचरितमहाकाव्यम्' के द्वारा की है, अपने महाकवित्वलाभ के लिये नहीं। इस महाकाव्य में शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित प्रभृति प्रायः सत्रह छन्दों का प्रयोग किया गया है। एक हजार से अधिक श्लोकात्मक इस महाकाव्य का वैशिष्ट्य यह है कि ललित एवं समासरहित पदों के सन्निवेश में महाकवि कालिदास के काव्य का अनुसरण किया गया है। यहाँ कवि श्री राधास्तुति के पश्चात् श्री राधाकुण्ड का श्री राधा सरोवर का, वरसाना नगरी का, वहाँ के गह्वर वन का तथा गोवर्धन पर्वत का ऐसा चित्रण करता है कि जिससे वे सभी पदार्थ पाठकों के दृष्टिपथ पर बलात् समुल्लसित हो जाते हैं। कलिन्द गिरिकन्या (कालिन्दी) यमुना के वर्णन में तो कवि की लेखनी उसकी तरङ्गों की भाँति स्वच्छन्द प्रवाहित होती है। उसका निखिल मलापहारिणीत्व तो भगवती भागीरथी से भी आगे बढ़ जाता है। उसके निर्मल जल के श्यामत्व की उत्प्रेक्षा तो सहृदयों के हृदयों को अत्यधिक चमत्कृत करती है। सूर्यपुत्री के ऐश्वर्य का निरूपण करने में कवि इतना भक्ति प्रवण हो गया है कि वह प्रार्थना करता है कि – हे तरणिजे! मृत्युकाल में मेरे मुख में दो तीन बूँदे अवश्य डाल देना, जिससे कि मुझे यम यातना न सहनी पड़े क्योंकि तुम यम की बहन हो। रासलीला का ललित निरूपण तो ऐसा प्रतिभासित होता है कि जैसे यह कवि वहीं बैठ कर वर्णन कर रहा हो। यद्यपि श्रीमद् भागवत के वर्णन से यह वर्णन कुछ भिन्न सा है, तथापि यह अवश्य ही आनन्द सन्दोहोत्पादक है। यह

निरूपण शास्त्रों में निपुणता की भाँति ललितकला निपुणता को भी प्रख्यापित करता है।

स्थान–स्थान पर आश्रम में ब्रह्मचारियों की शास्त्र चर्चा के प्रसङ्ग में व्याकरण के, न्याय के, वेदान्त के, योग के, किम्बहुना साहित्य के भी सिद्धान्तों का निरूपण विद्वानों के मन को मोहित कर लेता है। वरसाना नगरी के वर्णन में अनुराग और वैराग्य का साधु समन्वय प्रेक्षकों के मानस मयूर को नवनीरद के समान नचा देता है।

श्री राधा कृष्ण के अभेद प्रतिपादन में दुरूह उपनिषत्– सिद्धान्त काव्य शब्दों के द्वारा ऐसे समुपस्थापित किये गए हैं कि जिससे मन्दबुद्धि वालों को भी वे आसानी से अवगत हो जाते हैं। प्रश्नोत्तर के माध्यम से कृष्णा–कृष्ण के ऐक्य का समर्थन तो कवि की अनुपम काव्य चातुरी एवं शास्त्र चातुरी को व्यक्त करता है।

श्री राधाकृष्ण की सहचरी गोपियों की अनन्य भावना का सम्यक् समर्थन किया गया है। उन दोनों की वह सेवा कुछ भी फल की अपेक्षा न रखते हुए की गई है। उनके शुद्धचरित में लौकिक फल प्राप्ति की समीहा परिलक्षित नहीं होती है। शबरियों के शुद्धान्तःकरण का निरूपण तो इस कवि की परम प्रतिभा की पराकाष्ठा को निर्दिष्ट करता है तथा मन की निर्मलता एवं भगवद् भक्तों में श्रद्धातिशय को घोषित करता है। वास्तव में भगवान् अपनी अपेक्षा अपने भक्तों के कल्याण को विशेष रूप से सोचते हैं तभी तो श्रीमद् भागवत् के प्रथम स्कन्ध, नवम अध्याय, सैंतीसवें श्लोक में भीष्म स्तुति में कहते हैं कि–

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतोरथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः।।[1]

इसी प्रकार अन्य विषय भी मधुर कोमल पदसन्निवेशों के द्वारा स्थान–स्थान पर देखे जा सकते हैं। यहाँ अनन्यशरणागति, भक्ति और दास्य भाव का माहात्म्य

---

[1] श्रीमद् भागवतम्– 1/9/37

यत्र–तत्र दिखाई देता है। इस प्रकार के विभिन्न भावों का दिग्दर्शन कराने के लिए ही मैंने इस महाकाव्य के काव्यशास्त्रीय अध्ययन का प्रयास किया है। आशा है विद्वज्जन मेरे इस तुच्छ प्रयास में मुझे आशीर्वाद प्रदान करके अनुगृहीत करेंगे।

धन्यवाद एवं अभार प्रदर्शन

प्रस्तुत शोध कार्य में सहयोग एवं सहायता तथा मार्गदर्शन करने के लिये मैं सर्वप्रथम अपने गुरुदेव एवं निर्देशक डॉ0 सुभाष चन्द्र सचदेवा जी की हृदय से आभारी हूँ जिनके शुभाशीर्वाद के फलस्वरूप मैं इस कार्य को सम्पन्न कर पाई हूँ। मैं तो यहीं कहूँगी–

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवोमहेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

इसके पश्चात् मैं पूर्व विभागाध्यक्षा श्रीमती डॉ0 सुधा जैन एवं वर्तमान विभागाध्यक्ष डॉ0 बलदेव सिंह, मेहरा साहब तथा अन्य सभी संस्कृत विभाग के विद्वान् गुरुजनों के प्रति हार्दिक धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी कृपादृष्टि एवं शुभाशीर्वाद ने ही मुझे इस कार्य के सम्पन्न करने योग्य बनाया तथा मुझे मंजिल पर पहुँचाया।

प्रस्तुत कार्य के प्रेरणा स्रोत मेरे पिताजी डॉ. मूलराज शर्मा तो मेरे शोध कार्य के सूत्रधार ही हैं जिन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर तथा अनेक पुस्तकों की व्यवस्था करके और अनेक विद्वानों से सम्पर्क करके सामग्री संकलन करने में मेरी सहायता की। उनका भी धन्यवाद करना मेरा कर्त्तव्य है।

प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता आचार्य श्री कालिका प्रसाद शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त करने में हमें बनारस के जिन विद्वानों से मार्गदर्शन प्राप्त हुआ उनके ऋण से तो मैं कभी उऋण नहीं हो पाऊँगी। सर्वप्रथम संस्कृत संस्थान नई दिल्ली में हमारी भेंट हुई बनारस हिंदु यूनीवर्सिटी के व्याकरण

विभागाध्यक्ष डॉ0 भगवत् शरण शुक्ल जी से। उन्होंने हमें बनारस बुलाकर आचार्य कालिका प्रसाद शुक्ल जी के परम प्रिय शिष्य एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में शुक्ल जी के उत्तराधिकारी, वेदवेदांग संकाय के प्रमुख एवं व्याकरण विभागाध्यक्ष डॉ0 गिरिजेश कुमार दीक्षित जी से मिलवाया जिन्होंने प्रस्तुत महाकाव्य की संस्कृत टीका भी लिखी है तथा उनके ग्रन्थों का प्रकाशन भी करवाया है। उन्होंने तो शुक्ल जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हमारे सम्मुख खोलकर रख दिया तथा स्वयं अपने हाथ से उनकी वंशावली का वटवृक्ष बनाकर दिया। शुक्ल जी के सुपुत्र आचार्य रामनारायण शुक्ल जी का योगदान भी चिरस्मरणीय रहेगा जिनकी कृपा से मुझे उनके पिता श्री के जीवन के कई रहस्य एवं अनेक फोटो भी प्राप्त हुए जो कि प्रस्तुत शोध प्रबंध की शोभा को चार चाँद लगा रहे हैं। इन सभी महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद एवं आभार प्रकट करते हुए मुझे अपार आनन्द प्राप्त हो रहा है।